M.A. Semester - II
Philosophy C.C. - 08
Unit - II

Prof. Ragini Kumari
Prof & Head
P.G. Centre of Philosophy
Maharaja College, Ara

आनिनद का ब्रह्मविचार

(भाग - II)

इसी उपदेश तथा की आवार लेना
गुरु तपस्या की ओर बढ़ जाते हैं। उन्होंने
इन्होंने सोचा कि "अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात अन्नाद्येव,
खल्विमानि भूतानि जायन्ते, अन्नेन जाति जीवन्ति"
अर्थात अन्न ही ब्रह्म है इसी से सभी
जीव उत्पन्न होते हैं और अन्न से ही जीते
हैं। पर इसी बार तप के फलस्वरूप इन्हें
यह ज्ञान नहीं प्रतीत हुआ, इन्हें महसूस हुआ
कि प्राण ही ब्रह्म है पर पुनः इनके पिता
ने इन्हें तप करने को कहा पुनः इन्होंने
तप के फलस्वरूप सोचा कि मन ही ब्रह्म है
वे पुनः पिता के पास जाकर अपना अनुभव
सुनाये। इनके पिता ने इन्हें पुनः तप की
ओर मन रखने को कहा। चौथी बार इन्होंने
सोचा कि नहीं मन ब्रह्म नहीं है बल्कि 'विज्ञान'
ब्रह्म है। किन्तु जब इन्होंने अपने इस अनुभव
को पिता के सम्मुख रखा तो इनके पिता ने
इन्हें पुनः तप करने को कहा। इस अन्तिम बार
तप के फलस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर आ
पहुँचे कि 'आनन्द' ही ब्रह्म है। जब वे अपने
इस अनुभव को पिता के सम्मुख रखे तो
इनके पिता ने कहा कि अब तुम ब्रह्म के
वास्तविक स्वरूप को समझ गये हो, क्योंकि
यही आनन्द ब्रह्म है। आनन्द उत्पन्न

परिणाम है, इसमें ज्ञाता ज्ञेय एकाकार हो जाते हैं। यह सत्य है और यहीं आकर दार्शनिक खोज प्राप्त हो जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि आनन्द से कोई उच्चतर सत्ता नहीं है वरन् वही आनन्द परम सत्ता है। आनन्द एक प्रकार का क्रियाशील और सुसंज्ञानात्मक अनुभव अथवा क्षमता का उपयोग है, याज्ञवल्क्य ने ब्रह्म की चर्चा निषेधात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि —

"इस तत्व को ब्रह्मवेत्ता माया कहते हैं। यह न तो मोटा है, न पतला, न छोटा है न बड़ा, न लाल है, न द्रव्य है, न छाया है, न अंधकार, न वायु है, न आकाश, न संज्ञान है, न रस, न गन्ध, न नेत्र है, न श्रवण है, न मन है, न भाव उसमें न भीतर है, न बाहर, वह कुछ नहीं और उसे कोई नहीं खाता।

(बृहदारण्यक उपनिषद् 3-8-2)

बृहदारण्यक में याज्ञवल्क्य की यह युक्ति अत्यन्त ही प्रसिद्ध है, यह बाद में चलकर मूल सूत्र बनता है। ब्रह्म के विषय में यहाँ दो मत मिलते हैं।

(1) सप्रपंच ब्रह्म
(2) निः प्रपंच ब्रह्म।

एक में ब्रह्म इस जगत के साथ है, अतः इसे सप्रपंच ब्रह्म कहते हैं और दूसरे मत के अनुसार ब्रह्म इस जगत से परे है। रामानुजाचार्य तथा अन्य वेदान्ति ब्रह्म को सप्रपंच मानते हैं। किन्तु शंकर जैसे वेदान्ति ब्रह्म को निः प्रपंच मानते हैं। ऊपर में वर्णित बृहदारण्यक की पंक्ति निः प्रपंच ब्रह्म का समर्थक

है। उपनिषद में ब्रह्म के लिए वर्णित 'नेति - नेति' शब्द इसी निः प्रपंच निर्गुण ब्रह्म का समर्थन करते हैं।

इस सगुण निर्गुण के विवाद से परे हटकर यह मानना उचित है कि यह संसार ब्रह्म का ही स्वरूप है और उसी से निकला हुआ कहा यह संसार है वही इस संसार का निमित एवं उपादान कारण है।

उपनिषद का मूल उद्देश्य आत्मा और ब्रह्म को एक सूत्र में कर देना है।

"सर्वं आयम आत्मा ब्रह्म"
(बृहदारण्यक उपनिषद 4:4-5)

यह उपनिषद का मूल मन्त्र है जो कि इसकी सबसे बड़ी देन है। यहाँ आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं रहता। छान्दोग्य उपनिषद का प्रश्न भी इसी तथ्य को प्रकाशित करता है कि परम तत्व एक है चाहे वह आत्मा के नाम से माना जाए या ब्रह्म के नाम से।

"एकं सद् विप्राणा बहुधा वदन्त।"

Reality is one which is called by various namely by his scholars."

वस्तुतः उपनिषद के अन्तर्गत विषयी और विषय, ब्रह्म और आत्मा दोनों ही तत्व एकात्मक माने गये हैं, ब्रह्म ही आत्मा है, तैतिरेय उपनिषद कहता है कि वह ब्रह्म जो पुरुष में रहता है और वह जो सूर्य में रहता है दोनों एक है। आत्मा और ब्रह्म दोनों को उपनिषद में एक अर्थ में व्यवहृत किया गया है। वल्य ने आत्मा के स्वरूप पर प्रकाश डालते

इए कहा है कि यह ब्राह्मण जाति, यह क्षत्रिय जाति, ये लोक, ये देवगण, भूत-भूत और ये सब जो कुछ भी है सब आत्मा ही है। ऊपर के वर्णन से पता चलता है कि इन सब जगहों पर आत्मा के बदले ब्रह्म शब्द का ही व्यवहार होना चाहिए था। वस्तुतः यहाँ आत्मा ब्रह्म के सदृश्य ही प्रयुक्त होता है साथ ही ब्रह्म के विषय में बतलाये गये भिन्न-भिन्न धारणाएँ आत्मा सम्बन्धी विचारों से अनुकूलता रखती है। उच्चतम ब्रह्म जो आनन्द है, वही आत्मा का स्वरूप है, जिसकी अभिव्यक्ति चौथी अवस्था अर्थात् तुरीय अवस्था' में होती है। इस अवस्था में विषयी और विषय एक ही है। उपनिषद् यह मानता है कि सर्वोपरि आत्मा जो अर्थभाव से आत्मपता हो जाता है, तब हम इसे ईश्वर की संज्ञा से ही पुकारते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के बाद हम इस तथ्य पर आते हैं कि उपनिषद् की केन्द्रीय शिक्षा "आत्मा और ब्रह्म के बीच तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करना है।" इनके अनुसार आत्मा और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है। ब्रह्म ही आत्मा है और आत्मा ही ब्रह्म है। उपनिषद् का विभिन्न श्लोक एवं विवाद इस बात को स्पष्ट करता है कि आत्मा रूप का यही अर्थ है जो ब्रह्म शब्द का होता है, यही कारण है कि उपनिषद् की केन्द्रीय शिक्षा का संकेत है —

"अहं ब्रह्मास्मि तत् त्वम असि"

यानी मैं ही ब्रह्म हूँ, तुम ही ब्रह्म हो।